Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XII, Issue No. 23, October-2016, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन में ब्रह्मचर्याश्रम संबंधी मान्यताएँ

Dr. Sanjay Kumar*

Department of A.I.S.A.S History, Magadh University Bodh Gaya, Bihar

सार - ***प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों ने सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने एवं उनके सुचारू रूप से संचालन के लिए जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था का संगठन किया था उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन को शिष्ट एवं संतुलित बनाए रखने के लिए आश्रमों की व्यवस्था की थी। मनुष्य का जीवन एकपक्षीय होने पर पूर्ण और सफल नहीं सकता है, अतः यह आवश्यक है कि जीवन मे विभिन्न प्रकार के कर्मों को किया जाय ताकि नीरसता न रहे एवं भौतिक सुख का आनंद लेते हुए परलोक हित के लिए भी प्रयत्न किया जाय। इसी आवश्यकता ने प्राचीन भारत में आश्रम-व्यवस्था को जन्म दिया जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं का विकास करते हुए समाज का भी कल्याण कर सकता था। प्राचीन विचारकों के अनुसार यह एक यज्ञ है, जिसके द्वारा उद्वेश्यों के प्रति व्यक्ति में समर्पण की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध-आलेख के अध्ययन का मुख्य विषय प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन में प्रचलित ब्रह्मचर्य-आश्रम संबंधी मान्यताओं को उल्लेखित करता है। प्राचीन भारत में आश्रम-व्यवस्था की उत्पत्ति एवं उससे संबंधित महत्वपूर्ण धारणाओं को भी इस शोध-आलेख में अध्ययन के तौर पर समाहित किया गया है।***

कुंजी शब्द: आश्रम, नीरसता, परलोक, वर्ण-व्यवस्था, समर्पण

----------X----------

शोध-प्रविधि:

प्रस्तुत शोध-आलेख ऐतिहासिक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन से संबंधित महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन द्वितीय स्त्रोतों से किया गया है। कतिपय महत्वपूर्ण ग्रन्थ, शोध-ग्रन्थ और शोध-प्रबन्ध द्वितीयक स्त्रोत के तहत सहायक सामग्री हैं जिनका अवलोकन कर प्राप्त तथ्यों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया गया है ताकि यह सम्पूर्ण अध्ययन ज्ञानवर्द्धन के लिए उपयुक्त एवं सार्थक हो सके।

विषय-प्रवेश:

'आश्रम' शब्द संस्कृत की 'श्रम' धातु से बना है जिसका अर्थ है प्रयास करना या परिश्रम करना। इस अर्थ में आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति अपने जीवन के एक भाग के लिए निधांरित उद्वेश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। मनु के अनुसार ये आश्रम चार हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। प्रत्येक आश्रम मानव जीवन के एक-एक मुख्य मोड़ का द्योतक है और एक उच्चतर अवस्था का बोध कराता है। अर्थात आश्रम-व्यवस्था में यह मान लिया गया कि मानव के जीवन की गति ऊपर की ओर है। चार मंजिल ऊपर, अन्त में ब्रह्म का निवास है। एक मंजिल पार करके ही दूसरी मंजिल पर पहुँचा जा सकता है। पर दूसरी मंजिल पर पहुँचने के लिए पहली मंजिल में कुछ समय तक रूक-रूक कर दूसरी मंजिल पर जाने की तैयारी करनी पड़ती है। ताकि दूसरी मंजिल की यात्रा विफल न हो जाए। इसलिए प्राचीन काल मे मानव जीवन के औसतन 100 वर्षों को 25-25 वर्षों के चार भागों में विभाजित करके एक-एक आश्रम की योजना बनाई गई। ब्रह्मचर्याश्रम में जीवन के प्रथम 25 वर्ष तक गुरूकुल में रहकर विद्याध्ययन तथा धर्म का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, गृहस्थाश्रम में विवाह करके परिवार तथा उद्वेश्यों की पूर्ति की जाती है। वानप्रस्थाश्रम में घर को त्यागकर तपस्या व ध्यान द्वारा सांसारिक इच्छाओं और बन्धनों से मुक्त होने के प्रयास किए जाते हैं और संन्याश्रमों में समस्त सांसारिक बन्धनों व मोह को पूर्णतया त्याग कर मोक्ष की प्राप्ति के लिए यत्न किए जाते हैं। इसके लिए प्रत्येक आश्रम में रहते हुए व्यक्ति को एक आदर्श स्थिति को बनाए रखना तथा निश्चित नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है।

www.ignited.in

जैसा कि ऊपर वर्णित किया गया कि आश्रम शब्द संस्कृत की 'श्रम' धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्रयत्न करना, या उद्योग करना, परंतु 'श्रम' में 'आ' लगने से इसका अर्थ विश्राम विराम-स्थल हो जाता है। व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न करता, उसमें उसके विराम के लिए कई स्थान हैं, और उन स्थानों में वह निर्दिष्ट कर्म सम्पन्न करता है। प्रत्येक आश्रम की अपनी अलग-अलग स्थिति है जिसमें वह विशेष प्रकार के कर्म करता है। वह जीवनकाल की एक सीमा है, जिसमें वह क्रमशः एक क्रम से दूसरे क्रम में जाता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। ड्युसेन ने उचित ही कहा है कि, "व्यक्ति का जीवन क्रमशः आश्रमों के नियमों के पालन से विशुद्ध होता है, तथा वह अन्त में ब्रह्म-लोक के लिए योग्य हो जाता है।"

'आश्रम' शब्द संस्कृत की 'श्रम' धातु से बना है जिसका अर्थ है प्रयास करना या परिश्रम करना। इस अर्थ में आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ हम अपने जीवन के एक भाग के लिए निर्धारित उद्वेश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं। मनु के अनुसार चार आश्रम मानव जीवन के एक-एक मुख्य मोड़ का द्योतक है और एक उच्चतर अवस्था का बोध कराता है। अर्थात् आश्रम-व्यवस्था में यह मान लिया गया कि मानव के जीवन की गति ऊपर की ओर है।

प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार आश्रम-व्यवस्था:

आश्रम-व्यवस्था का प्रचलन कब हुआ, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। ऋग्वेद में आश्रमों का व्यवस्थित रूप में उल्लेख नहीं है, परन्तु 'ब्रह्मचारी', 'गृहस्थ' एवं 'मुनि' का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता में चार आश्रमों का उल्लेख है, किन्तु उनमें पारस्परिक क्रम नहीं है। प्राचीनतम उपनिषदों में भी आश्रमों का क्रमबद्ध उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु कुछ में उनके प्रस्फुट उल्लेख हैं जिनसे विदित होता है कि उनकी रचनाकाल में आश्रम-व्यवस्था एक निश्चित स्वरूप धारण कर रही थी।

यह भी मान्यताएँ हंै कि आश्रम -व्यवस्था का प्रचलन बहुत बाद हुआ, क्योंकि पिटकों में आश्रमों का क्रमबद्ध उल्लेख नहीं मिलता है। यह विचार उचित नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि आश्रम-व्यवस्था का क्रमीकरण उनके पूर्व हो चुका था। उत्तरवैदिक ग्रन्थों में 'ब्रह्मचारी' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। इसी प्रकार 'यति' का प्रयोग सन्यासी के अर्थ में हुआ है। मुख्य रूप से उत्तरवैदिक संहिताओं में ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ के उल्लेख मिलते हैं। ऐतेरेय-ब्रह्ममण के एक सन्दर्भ में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनकी रचना के काल में चारों आश्रमों का क्रमीकरण हो चुका था। आश्रम-व्यवस्था का क्रमिक निरूपण मुख्यतः ब्राह्ममण-ग्रन्थों के रचना-काल में हुआ। श्वेताश्वर उपनिषद् में जो अपेक्षाकृत नवीन उपनिषद् हैं, 'अत्याश्रमी' शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि आश्रम धर्म का पालन करना आवश्यक था। वृहदारण्यक उपनिषद् से भी ज्ञात होता है कि गृहस्थाश्रम के उपरान्त संन्यास आश्रम का क्रम था। याज्ञवल्लक्य ने जनक के चारों आश्रमों की व्यवस्था सुनाई थी। धर्मसूत्रों में उहें अधिक व्यवस्थित किया गया है। उनमें आश्रम विशेष में किए जाने वाले कामों और पालनीय नियमों का उल्लेख है। उनमें आश्रमों के पारस्परिक सम्बन्धों पर भी विचार किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आश्रम-धर्म का विस्तृत निरूपण मिलता है।

ब्रह्मचर्य-आश्रम संबंधी अन्य प्राचीन धारणाएँ:

महाभारत में आश्रम के सम्बन्ध में बहुत सी बातों का उल्लेख है। इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से त्रेतायुग में मानी गई है। मत्स्य पुराण तथा विष्णु पुराण में भी यही बात कही गई है। आश्रमों को दैव उत्पत्ति के रूप में प्रतिपादित कर लोगों के मन में इनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न की गई है। बोधायन धर्म-सूत्र से विदित होता है कि आश्रम-व्यवस्था की कल्पना लोगों ने देवताओं से ग्रहण की, देवताओं की दृष्टि में आश्रम-व्यवस्था जीवन की अत्यन्त विकसित अवस्था है, मानव-समाज में उसका अनुसरण किया गया। त्यागमय भोग हिन्दू संस्कृति व सामाजिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता है। जीवन का उद्वेश्य केवल जीना ही नहीं बल्कि इस रूप में जीवन-यापन करना है कि इस जीवन के पश्चात जन्म और मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल जाए-परब्रह्म या मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो। इसके लिए धीरे-धीरे अपने को तैयार करने की आवश्यकता है ताकि भोग और तृप्ति के बाद त्याग और वैराग-भाव उचित आधार पर पनप सके। इसी का समाधान आश्रम-व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत मानव-जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास इन चार भागों में बाँटकर जीवन के परम उद्वेश्य की प्राप्ति का प्रयत्न किया गया है।

ब्रह्मचर्याश्रम संबंधी मान्यताएँ:

मनु के अनुसार जिस स्थिति में या अवस्था में व्यक्ति शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करता है उसी को ब्रह्मचर्याश्रम कहते हैं। 'ब्रह्मचर्य' दो शब्दों से मिलकर बना है- 'ब्रह्म' तथा 'चर्य'। ब्रह्म का अर्थ है महान् तथा 'चर्य' का अर्थ है विचरण करना, अर्थात ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है ऐसे मार्ग पर चलना जिससे मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा अध्यात्मिक दृष्टि से अल्प से महान बन सकता है। उपनयन संस्कार के उपरान्त बालक जीवन के प्रथम आश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करता है, और विद्यार्जन हेतु घर त्याज्यकर गुरूकुल में प्रवेश करता है।

मनु के अनुसार ब्रह्मचारी का अर्थ है शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से ऐसे मार्ग का अवलम्बन करना जिससे शरीर उन्नत हो, स्वस्थ हो, मन, बुद्धि तथा विद्या से भरपूर हो और आत्मा पवित्र हो। इन गुणों के विकसित होने पर ही एक व्यक्ति शुद्र से महान हो सकता है। इस दृष्टि से मनु के काल में ब्रह्मचारी के साधना के लिए तीन मार्ग निश्चित किए गए थे- प्रथम मार्ग शारीरिक ब्रह्मचर्य का था। शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य का अर्थ था लैंगिक संयम और इसे वे वीर्य रक्षा कहते थे। मनु ने ब्रह्मचारी को ऐसे सभी कार्यों या आचरणों के करने का निषेध किया जिनसे कि वीर्य-रक्षा के कार्य में बाधा पहुंचे या पहुँचने की सम्भावना हो। इसलिए ब्रह्मचारी के लिए मद्य, माँस, माँस गंध, पुष्प, रस, अंजन आदि सब कुछ वर्जित था। द्वितीय मार्ग मानसिक विकास का था। इसके लिए तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि मानसिक विकास के लिए ब्रह्मचारी को यथार्थ आचरण करना सीखना चाहिए। साथ ही आचरणों के विषयों में स्वाध्याय स्वयं करें और दूसरों को करायें, सत्य का प्रयोग करें तथा 'सत्य' की स्वयं खोज करें और दूसरों को भी ऐसा करने को प्रेरित करें। यही मानसिक विकास का मार्ग है। तृतीय मार्ग आध्यात्मिक विकास का था। आध्यात्मिक विकास के लिए मनु का कथन है कि ब्रह्मचारी को यम-नियमों का पालन करना चाहिए, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल नियमों के पालन में ही न लगा रहें। योगदर्शन में लिखा है कि शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-पूजा ये नियमों का लक्ष्य तो मानसिक विकास है, आत्मिक विकास नहीं। आत्मिक या आध्यात्मिक विकास यमों के पालन से होता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह यम हैं और ये आत्मविकास के मार्ग हैं। ब्रम्हचारी को इन्हीं मार्गों पर चलना चाहिए।

ब्रह्मचर्याश्रम संबंधी महत्वपूर्ण विधान:

गुरूकुल या ब्रह्मचर्याश्रम में रहते हुए ब्रह्मचारी के नित्यकर्म के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नियम होते थे। मनुस्मृति के अध्याय-2 में बताए गए कुछ नियम इस प्रकार हैं- ''ब्रह्मचारी यज्ञोपवित, आजिन, मेखला और दण्ड को नियमपूर्वक धारण करता रहे। वह भिक्षा माँग कर अपना आहार करे। मध्याह्न और रात्रि के भोजन के बीच कुछ न खाए। अधिक भोजन कभी न करे। सूर्यास्त के समय भी सोना अत्यन्त वर्जित है। वह मन-वचन-कर्म से आचार्य की अनन्य सेवा करे।

ब्रह्मचारी न तो गुरू के वस्त्रों से अच्छा पहने और न गुरू के भोजन से अधिक उत्तम भोजन प्राप्त करें। कभी गुरू की छाया का लंघन न करें। गुरू के समक्ष सर्वदा नीचे आसन पर बैठे। ब्रह्म तीर्थ से यथाविधि आचमन कर और ब्रह्मान्जलि बांधकर गुरू से अध्ययन करे। दूर-दूर से तलाशकर समिधाएँ लाए और प्रातः-सायं हवन करें। सात दिन वे हवन न करने वाला ब्रह्मचारी 'लुप्तव्रत' हो जाता है। स्नान कर देव, ऋषि और पितृगण का तर्पण, देवताओं का पूजन तथा संध्योपासना नित्य करे। कपूर, कस्तूरी, केसर आदि सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग न करे। क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर से मुक्त रहे। परछिद्रावेन्षण और निरर्थक वाक् कलह के फेर में कभी न पड़े। ईश्वर के बारे में ज्ञान प्राप्त करना, दोषो, बुराइयों, अपवित्र व अनुचित कार्यों से बचना, पवित्र जीवन बिताना, शरीर एवं मस्तिष्क को अनुशासित करना, धर्म आदि से सम्बन्धित साहित्य पढ़ना या संक्षेप में वेदाध्ययन करना ब्रह्मचर्याश्रम के प्रमुख कर्तव्य थे।

निष्कर्ष:

प्राचीन भारतीय समाज में प्रचलित आश्रम-व्यवस्था मानव जीवन को सुखी एवं श्रेयस्कर बनाता है। नैतिक, धार्मिक, सामाजिक इत्यादि आधारों पर ब्रह्मचर्य-आश्रम संबंधी विधान एवं मान्यताएँ प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहारिक बनाने में तत्कालीन समय में सक्षम था। सम्पूर्ण मानव जीवन को चार भागों में अर्थात् 25-25 वर्षों में विभक्त कर प्रत्येक व्यक्ति को अपने दायित्वों के निर्वहण के लिए यह व्यवस्था सशक्त बनाता था। ईश्वर, व्यक्ति, समाज, राज्य और पर-राष्ट्र इत्यादि के लिए प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व निर्धारित है जिनके नियमों ,परिनियमों, विधान एवं सिद्धान्त और मान्यताओं से ब्रह्मचर्य-आश्रम व्यवस्था परिचित एवं दायित्वबोध कराता था। आधुनिक भारतीय समाज इस व्यवस्था को भले ही मान्यता प्रदान नहीं करता हो किन्तु आज भी इसकी मान्यतायें और सिद्धांत मानव जीवन के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

ग्रन्थ सूची:-

1. प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास- ओमप्रकाश।
2. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन- वासुदेव उपाध्याय।
3. संस्कार- विधि विमर्श- प्रकाशक नरेन्द्र शशि।
4. वीरमित्रादेय संस्कर प्रकाश खंड।
5. धर्मशास्त्र एवं इतिहास-पी0 वी0 काणे।

6. स्टडीज इन हिस्ट्री एण्ड कल्चर- लाल नरेन्द्र नाथ।

7. मुमुक्ष प्रकरण।

8. सोर्सेज ऑफ़ हिन्दू धर्म- द अल्केतर।

9. पॉलिटिकल आइडियाज एण्ड इन्स्टीच्यूसन्स इन दि महाभारत- वी0 पी0राय।

Corresponding Author

Dr. Sanjay Kumar*

Department of A.I.S.A.S History, Magadh University Bodh Gaya, Bihar